21.05.2019

धरोहर के झरोखे से

उस्ताद

श्रीपत राय व भैरव प्रसाद गुप्त द्वारा संपादित कहानी पत्रिका के नववर्षांक 1957 में प्रकाशित **षेखर जोषी** की कहानी उस्ताद साहित्यानुरागियों के लिए प्रदर्शित की जा रही है–

गाड़ी धीरे–धीरे चाल पकड़ने लगी। कम्पार्टमेंट के दरवाजे पर खड़ा होकर मैं प्लेटफार्म की ओर देखता हूँ, दर्जनों लाल–हरी बत्तियाँ, फ्लोरेसेंट लाइट, दूध–चाय बेचनेवालों के चमकीले बर्तन, अपने सगे–संबंधियों को बिदा देने के लिए आए हुए लोगों के हिलते हुए रूमाल...सब कुछ पीछे छूटता चला जा रहा है। रोशनी, यात्रियों और खोमचेवालों की भीड़ के बीच मेरी दृष्टि उस आकृति को फिर–फिर देख लेने का लोभ नहीं छोड़ पाती। लम्बे, काले बरानकोट में अपना भारी–भरकम शरीर ढाँके, भीड़ में से सहज गति से अपना रास्ता बनाते हुए उस्ताद चले जा रहे हैं।

बहुत दिन हो गए। उस दिन उस्ताद को पहली बार देखा था। पेट्रोल के खाली टिन को जमीन पर रखकर उसपर वह बैठे हुए थे। संकोच, आश्चर्य उत्सुकता और घबराहट से भरा मन लेकर जब मैंने अपने आने का कारण उन्हें बताया, तो अपना परिचय उन्होंने दिया– रजिस्टर का नाम भी है मेरा खुशालचंद। चाहो तो मुझे उसी नाम से पुकार सकते हो। लेकिन अगर मुझसे ही काम सीखना है, तो उस्ताद कहना होगा।

उस दिन कारखान के रस्म–रिवाजों का ज्ञान नहीं था। बड़ी अजीब–सी लगीं उनकी बातें। परंतु फिर भी जाने क्यों सहमकर मैंने अपनी स्वीकृति दे दी–ठीक है, उस्तादजी!

–उस्तादजी नहीं, उस्ताद, सिरिफ उस्ताद! –कुछ ऊँचे स्वर में उन्होंने मेरी गलती को सुधारते हुए कहा। पास ही मसखरा बैजू खड़ा था, मुँह फेर उसने

कारीगरों से मेरी नकल करते हुए कहा–उस्तादजी!– और फिर इफ़्फी कर हँस दिया। कुछ कारीगर भी सहमे–सहमे–मुस्कराने लगे।

माँ–बाप का दिया हुआ लाड़–प्यार का नाम और होता है, मित्र–परिचित किन्हीं अन्य नामों से पुकारते हैं। कभी–कभी रजिस्टर के नाम का महत्व केवल रजिस्टर तक ही सीमित रह जाता है। उन्हें कारखाने के सभी कारीगर उस्ताद ही कहा करते थे। हाँ, उनका एक नाम और भी था, जिन्हें उस्ताद कहने में हेठी का अनुभव होता, वे उन्हें मिस्त्री कहने वालों में कारखाने के मालिक और अफसर लोग ही थे।

मैं उस कारखाने में काम सीखने के लिए आया था। पढ़–लिखकर भी नौकरी नहीं मिली, तो पिताजी ने रायसाहब से कह–सुनकर उनके कारखाने में लगवा दिया। कुछ पढ़–लिखा होने का अहसास और कुछ इस तरह के वातावरण से परिचित न होने के कारण, उस दिन उस्ताद की बातें अच्छी नहीं लगी थीं। कालिख, तेल और पसीने से लिपी–पुती डांगरी में लिपटे हुए उनके स्थूल शरीर से निकलती हुई उस अजीब–सी–गंध के कारण जी मिचला उठा था। पहले दिन ही उस्ताद ने अपना महत्व जता दिया था–तीस साल हो गए हैं यही मोटरों का काम करते–करते। डॉक्टर के पास सौ मरीज जाते हैं, तो बीस ठीक नहीं भी होते, लेकिन कसम है न औजारों की जो आज तक एक गाड़ी भी मेरे हाथ से खराब निकली हो! पूछ लो उससे!

उस्ताद के मैले चेहरे पर अजीब–सी चमक आ गई थी। अपने कथन की प्रामाणिकता के विषय में जाने किससे पूछने को कहा था उन्होंने। वहाँ सभी अपने–अपने काम में व्यस्त थे।

वह बिना रुके कहते चले गए–बड़े साहब एक बार एक नई गाड़ी लाए थे, बिल्कुल नई किस्म की। रामलाल मिस्त्री को साहब बहुत मानते थे, लेकिन उस गाड़ी को देखकर उसकी भी नानी मर गई, और तब किसने ठीक की थी वह गाड़ी, जानते हो?

–आपने, उस्ताद?

—और कौन करेगा? बस उसी दिन से साहब ने इस सिकसन का काम मुझे सौंप दिया। बड़े साहब हुनर की कदर करते थे। —अंतिम शब्द कहते—कहते उनके स्वर में असंतोष झलक आया।

—मेरा उस्ताद कहता था कि आदमी ने ही मशीन बनाई है, तो आदमी के हाथ से वह कैसे ठीक न होगी! उसी उस्ताद की बदौलत आज हम भी कुछ हैं। उस्ताद का नाम कभी बदनाम नहीं करना चाहिए। माँ—बाप तो लड़कपन तक ही रोटी देते हैं, पर उस्ताद का दिया हुआ हुनर मरने तक रोटी देता है।

—ठीक कहते हैं, उस्ताद,—मैंने कहा। पर वास्तव में मेरा मन उनकी बातों में नहीं लग रहा था।

परंतु वह उसी उत्साह से मुझे बहुत—कुछ सीख देते रहे— जिसने एक बार उस्ताद मान लिया, उसे पूरा काम सिखाना पड़ता है, वरना अपना ही नाम बदनाम होता है। पर सीखना होगा दिल लगाकर। कोई व्यसन तो नहीं तुझे?

प्रश्न को सुनकर चौंक पड़ा। एक दम झूठ बोल देने का साहस नहीं हुआ। बोला—कभी—कभी पान—सिगरेट दोस्तों के साथ...

बीच में ही बात काटकर, उस्ताद ठहाका मारकर हँस दिए—ले, मेरे यार, पान—सिगरेट भी कोई नशा है? पान—सिगरेट का शौक आज किसे नहीं! कुछ और तो नहीं करते? आजकल के स्कूलिया छोकरे रंगीन तबीअत (तबीयत) के होते हैं!

वह क्या कहना चाहते थे, मैं नहीं समझा, ऐसी बात न थी। दूध के दाँत कबके टूट चुके थे। मैंने भी खुल कर ठहाका लगाया—नहीं, उस्तादजी, ऐसी बात नहीं है।

—उस्तादजी नहीं कहते, उस्ताद कहते हैं, पर समझे? बात समझा। पहली बार उस्तादजी कहने पर उन्होंने क्यों ऊँचे स्वर में प्रतिवाद किया था, बैजू ने क्यों मेरी नकल की थी, उस विचित्र इफ़्फी का अर्थ, सब समझ में आ गया।

जिन कारीगरों के काम पर उस्ताद को पूरा भरोसा था, उनमें बलबीर, तेजी, कुंदन तथा और लोग भी थे। उस दिन कुंदन को बुलाकर उस्ताद ने पूछा—वहाँ काम कर रहे हो?

–वही सिनेमावलों की सिवेरलेट पर।

–जिसमें नाकि¤ है?

–जी, हाँ।

–बाबू को भी ले जाओ अपने साथ, जरा समझा देना सब चीजें। नए आदमी हैं। –उस्ताद ने मुझे कुंदन के साथ जाने का इशारा किया, परंतु फिर टोककर कहने लगे–यहाँ, बाबू साहबी ठाट नहीं चलेगा।

कुछ डांगरी–वांगरी नहीं लाए अपने साथ?

मुझे पहले इस बात का बिल्कुल भी ध्यान नहीं था। तब अपने साफ कपड़ों के खराब हो जाने का ज्ञान हुआ। लज्जित स्वर में मैंने कहा–कल से ले आऊँगा, आज पता नहीं था।

–हूँ !–उस्ताद कुछ सोचने लगे। फिर उन्होंने कुंदन से कहा–देखो! फकीरा आज नहीं आया है, उसका कफन लटका होगा कहीं, बाबू को दे दो, पहन लेगा।

कुंदन कहीं से खोजकर फकीरा का 'कफन' ले आया। उस्ताद की डांगरी से भी ज्यादा मैली, चीकट थी वह डांगरी। कुंदन ने जब डांगरी मेरी ओर बढ़ाई, तो उसे हाथों में लेना ही पड़ा। योंही एक बार उसे पूरी तरह खोलकर मैंने कहा दिया–उस्ताद! मेरे लिए यह बहुत छोटी रहेगी, रहने दीजिए, इन्हीं कपड़ों से आज काम चला लूँगा।

कुंदन और उस्ताद दोनों ही मुस्कुरा दिए। उस्ताद ने व्यंग्य किया– फकीरा तो ससुर बौना ही रह गया!

पर अगले दिन को देखा, वह मुझसे चार अंगुल ऊँचा रहा होगा।

उस दिन मैं फिर कुंदन के साथ नहीं जा पाया। उस्ताद ने अपने ही पास बैठा लिया। मेरे लाख मना करने पर भी मेरे लिए सिगरेट मँगाया गया– आज के दिन तो तुम हमारे मेहमान हो, बाबू। कल से जैसे सब हैं, वैसे तुम भी काम करोगे।–उन्होंने कहा था।

सचमुच ही अगले दिन से मुझे भी दूसरे सभी कारीगरों की तरह काम करना पड़ा। उस्ताद से बहुत कम बातें हो पाती थीं। पहले दिन की–सी सब–कुछ कह डालने की उनकी आदत नहीं थी, वह तो पहले दिन उन्होंने शायद मेरी अज्ञानता भाँप ली थी, इस कारण सब–कुछ बताना आवश्यक समझा था। कारखाने के किसी हिस्से में किसी जरूरी मरम्मतवाली गाड़ी के नजदीक उस्ताद बैठे हुए होते। कारीगरों को आदेश देना, स्वयं निरीक्षण करना और फिर किसी कारीगर के काम से संतुष्ट न होकर स्वयं औजार लेकर गाड़ी पर काम करने लगना। उनकी आदत बन गई थी।

नए आदमी को सबकी धौंस सहनी पड़ती है, सभी काम करना पड़ता हैः–

–देखना, बाबू, उस गाड़ी के गियरबाक्स में तेल है या नहीं? न हो तो थोड़ी तकलीफ आप ही कर दो।

–ऐ मियाँ! जरा हमारा इंजन उतरवा दो, यार!

–जरा वाल ग्रैंड करने थे, मदद माँगें तो किससे? ले–देकर एक बाबू का हाथ खाली है, पर इनसे कहें कैसे? कहीं बुरा न मान जाए, भाई!

परंतु पूरी तरह परिचय हो जाने पर अनुनय नहीं की जाती, सीधी तरह आदेश दिया जाता या फिर फिकरे कसे जातेः–

–बाबू उस गाड़ी के पिछले चक्के में हवा भर दो!

–पम्प लीक कर रहा है, खोलकर नया पैकिंग लगा दो!

–बाबू को तो, भई, फकीरा की गाड़ी से ही फुरसत नहीं। हमें भी सलेंसर बँधवाना था, किससे कहें?

इसकी मदद कर, उसका हाथ बँटा, कहीं कोई पुर्जा खोल, कोई बाँध... धीरे–धीरे कुछ महीनों में थोड़ा–बहुत काम सीख पाया। थोड़े समय में अर्जित अपने अल्प ज्ञान को ही पर्याप्त समझकर एक दिन फकीरा के साथ काम करते मैं अपने–आपको सर्वज्ञ घोषित कर बैठा।

मेरी बात सुनकर फकीरा इतने जोर से ठहाका मारकर हँस पड़ा कि मैं स्वयं झुँझला उठा। अपनी आदत के अनुसार फकीरा ने मेरी बात का खूब प्रचार किया और उस दिन दोपहर के भोजन के बाद फिर मेरे कथन पर आलोचना होने लगी।

मैसी ने मेरे कंधे पर हाथ रखकर सहानुभूतिपूर्ण शब्दों में कहा– बाघ और बिल्ली की कहानी सुनी है, बाबू? बिल्ली ने बाघ को अपनी विद्या से सारे गुण सिखा दिए, लेकिन एक गुण अपने पास रखा। घमंड में आकर एक दिन बाघ बिल्ली पर झपटा, तो वह गुण बिल्ली के काम आया और वह पेड़ पर चढ़ गई। बाघ देखता रह गया।

यह तो समझ गया कि संकेत उस्ताद की ओर है, लेकिन यह न समझ पाया कि वह गुण कौन–सा है जो उस्ताद मुझे नहीं बताते।

–कभी वालटैमिंग बाँधा है? फकीरा ने बात स्पष्ट कर दी।

–नहीं, –मुझे स्वीकार करना पड़ा।

–कभी देखा भी कहीं बाँधते हुए?– यह गिरधर की आवाज थी।

सुनकर ऐसा लगा कि कहीं इन शब्दों में व्यंग छुपा हुआ है।

–नहीं,–लज्जित–सा होकर फिर स्वीकार करना पड़ा।

–कोई देखने दे, तब हो! वालटैमिंग बाँधते वक्त ही तो बाबू को चाय पीने या किसी गाड़ी का रेडेटर साफ करने जाना पड़ता है।– गिरधर ने ही फिर कहा और सभी कारीगर मुझे सहानुभूति का पात्र समझकर एक–एक, दो–दो शब्द अपनी ओर से जोड़ते रहे।

तब समझा कि यह उस्ताद की चाल ही थी कि जब कोई भी इंजन ओवरहाल होकर बाँधा जाता, तो एक विशेष समय वह स्नेहपूर्ण शब्दों में कोई काम बताकर मुझे अड्डे पर से उठने को विवश कर देते थे।

–बाबू! अभी तक चाय नहीं पी? जाओ पी आओ, खाना–पीना वक्त पर होना चाहिए।

—अच्छा, यह काम तो होता रहेगा, जरा उस गाड़ी का रेडेटर ड्रेन करके फिर भर दो।

—आज बैजू अकेला लगा हुआ है, जरा उसका हाथ बँटा दो।...

उस्ताद की इस चाल को याद कर और स्वयं अपनी अज्ञानता पर लज्जित होने के कारण मैं उदास हो गया। मैसी को इस बात का गर्व था कि उसने एक पढ़े—लिखे बाबू को गलतफहमी दूर कर उसके अहं को ठेस पहुँचाई है।

हम लोग फिर गाड़ी पर काम करने लगे। मैसी गाड़ी के नीचे लेट—लेट क्लच एडजस्ट कर रहा था और मैं सीट पर बैठ उसके आदेश के अनुसार पैडल दबाता, कभी छोड़ देता। शायद थोड़ा सुस्ताने के लिए उसने काम रोक दिया और वहीं से बोला—बाबू!

न चाहते हुए भी मुझे बताना पड़ा कि मैं उसकी बात सुन रहा हूँ।

—जानते हो, वालटैमिंग के ठीक न होने से इंजन का चलना कितना मुश्किल होता है? —उसने पूछा।

जी में आया, जोर से कहूँ, नहीं जानता! कुछ भी नहीं जानता! पर फिर मैंने संयत स्वर में अपनी अज्ञानता जाहिर कर दी।

—इस वक्त क्या बजा होगा, बाबू?

उसने प्रश्न किया, तो मुझे इस अप्रासंगिक प्रश्न को सुनकर कम हैरानी नहीं हुई। फिर भी मैंने उत्तर दे दिया—एक बजने को है।

परंतु मेरा अनुमान गलत निकला। मैसी का प्रश्न अप्रासंगिक नहीं था। नर्सरी क्लास की किसी मास्टरनी की तरह वह मुझे समझाने लगा—यह समझो, आपको एक बजे एक रोटी की भूख है, लेकिन एक बजे रोटी नहीं मिलती। दो घंटे बाद तीन रोटियाँ आपको मिलती हैं। तब हो सकता है कि आप एक भी न खाएं या कुछ खालें, कुछ बरबाद कर दें। लेकिन एक बात तो जरूर है कि हर हालत में आपका हाजमा बिगड़ जाएगा।

—हूँ, —सीट पर बैठे—बैठे अनमना—सा होकर मैंने हामी भर दी।

—यही हाल इंजन का है, —वह बोला —जिस वक्त किसी सिलेंडर का इन खुलता है, उस वक्त ठीक मेकदार में गैस पहुँच जाय, तो इंजिन ठीक चलेगा, वर्ना कुछ गैस जलेगी, कुछ बाहर आ जाएगी, इंजन का हाजमा बिगड़ जाएगा। इंजन भी तो आदमी की तरह ही मशीन है, बाबू! वालटैमिंग का मतलब ही यह है कि ठीक वक्त पै इंजन को ठीक खुराक मिले। समझे?

—समझा, मैसी साहब,—मैंने कहा।

उसी समय कुंदन रेंच लेने आ गया। मैसी की बात खत्म होने पर वह अपना दर्शन बघारने लगा—हमारे हिंदुस्तानी भाइयों की तो यह पुरानी आदत है कि मर जाएंगे, पर अपनी विद्या दूसरे को नहीं बताएंगे। हमारे वेद—सास्तर (शास्त्र) में हवाई जहाज बनाने तक की बातें लिखी हैं, पर पंडित लोग पढ़—पढ़के मर गए, किसी को बताया नहीं। अंग्रेजों ने वही चीजें पढ़ीं। स्कूल खोल दिए। उनके यहाँ घर—घर में इंजीनियर हैं।

—और सुनो,—मैसी बोला। वह गाड़ी के नीचे से बिल्ली की तरह निकलकर ऊपर चला आया—हमारे पड़ोस में एक काजी साहब रहते थे। मुहल्ले में किसी के बुखार हो, खाँसी हो, पेट में दर्द हो, जिन्न—भूत लग जाए, तो वह एक जड़ी देते थे, उसी से सब—कुछ ठीक हो जाता था। पर ऐसे काइयाँ निकले कि जब मरने लगे, तो उनके बेटे ने पूछा, अब्बाजान उस जड़ी की क्या पहचान है? तो बोले, बेटा, रमजान मियाँ को 50 रु. उधार दे रखे—रखे हैं, ले लेना। और फिर लटक गए।

मैसी ने अंतिम शब्द कहते—कहते काजीजी के लटकने का ऐसा अभिनय किया कि उसे देखकर मैं अपनी हँसी ने रोक पाया। कुंदन भी बड़ी देर तक हँसता रहा। अंत में कुंदन न फिर बड़ी गंभीरता से अपना मत—प्रकट किया—हिंदुस्तानी ऐसे काइयाँ न होते, तो 200साल गुलाम क्यों रहते?

यह स्वीकार करने में मुझे कोई आपत्ति नहीं कि मैं कुंदन की बातों से प्रभावित हो चुका था। प्रशंसापूर्ण मुस्कान के साथ सिर हिलाकर मैंने उसकी बात का समर्थन किया। कुंदन कारखाने के अच्छे कारीगरों में गिना जाता था। इसी कारण मैंने पूछा—कुंदन भई, वह वालटैमिंग बाँधा कैसे जाता है?

कुंदन को सहसा जैसे कुछ याद आ गया हो, हड़बड़ाकर बोला—अरे यार! मैं तो इंजन चालू ही छोड़ आया था, बेकार ही पेट्रोल जल रहा होगा!—और मेरी ओर देखे बिना ही चल दिया।

मैसी फिर गाड़ी के नीचे लेट गया था। मैंने वालटैमिंग बाँधने के विषय में उससे भी वही प्रश्न किया, तो मेरे प्रश्न का उत्तर देने की अपेक्षा उसने मुझे ही आदेश दे दिया—पैडल धीमे—धीमे नीचे—ऊपर दबाओ, देखना, चाल तो ज्यादा नहीं।

जी मैं तो आया कि पास पड़ी हुई हथौड़ी उठकर वहीं से उसके सिर में दे मारूँ पर मैं चुप रहा। मन—ही—मन में बुदबुदाया, साले बातें करते हैं, हिंदुस्तानी भाई काइयाँ होते हैं, यह होते हैं वह होते हैं, और अपनी बार एक छोटी—सी बात बताने में सुनी अनसुनी कर रहे हैं! फिर मन—ही—मन मैंने कुंदन और मैसी को संयुक्त रूप एक मोटी—सी गाली देकर अपने मन की भड़ास निकाल ली।

उस दिन काम में बिल्कुल मन नहीं लगा। सोचकर आज घर जाने पर पिताजी से रुपए लेकर इस विषय की कोई पुस्तक खरीद लाऊँगा। परंतु तब आधा महीना बीत चुका था और जो—कुछ पिताजी ने बताया, उसके अनुसार मैंने यह निष्कर्ष निकाला कि बनिये की दुकान से नून, तेल, राशन, ग्वाले से दूध—दही और पानवाले से पान सिगरेट तो उधार लाए जा सकते हैं, परंतु मोटर मिकैनिज्म पर पुस्तक लेने के लिए अभी 14—15 दिन और प्रतीक्षा करनी पड़ेगी।

दूसरे दिन कारखाने में गया, तो देखा, तेजी के अड्डे पर किसी जीप इंजन ओवरहाल होकर बँधाने जा रहा है। उस दिन मैं उसी अड्डे पर काम करने लगा। वहीं उस्ताद भी काम में हाथ बँटा रहे थे। मैं छोटा—मोटा काम करता रहा, पर मेरी दृष्टि उनके काम पर ही लगी रही। उन्होंने क्रैंकशाफ्ट, पिस्टन, वाल और कैम शाफ्ट इत्यादि ब्लाक में फिट किए, परंतु मैं नहीं समझ पाया कि वालटैमिंग कब बाँधा जाएगा। सहसा उस्ताद ने मेरी ओर देखा और कृत्रिम स्नेहपूर्ण स्वर में बोले—बाबू! चाय—वाय पी चुके कि नहीं? जाओ पी आओ, एक आधा गिलास हमारे लिए भी भिजवा देना।

मैं समझ गया कि अब वालटैमिंग बाँधने की बारी है। उस दिन मैंने हार न मानने का निश्चय कर लिया था। इसी कारण अपने स्वर को उतनी ही कृत्रिमता से

विनम्र बनाता हुआ मैं बोला—चाय तो सुबह ही पी ली थी, उस्ताद! छोकरे को आवाज देकर आपके लिए मँगवाए देता हूँ।

उस्ताद ने शंकित दृष्टि से मेरी ओर देखा। फिर बोले— कल जिस गाड़ी पर काम किया था, उसके चारों पहियों को खूब अच्छी तरह टाइट कर दो।

—पहिए तो, उस्ताद, कल ही टाइट कर दिए थे,—मैंने ब्रेक लगाया।

शायद वह कुछ भाँप गए थे, मेरी ओर व्यंग्यपूर्ण दृष्टि डालकर उसी भाव से बोले—आजकल बड़ी फुर्ती से काम करने लगे हो!

मैं चुप ही रहा, क्या उत्तर देता।

कुछ देर तक उस्ताद भी कुछ न बोले। फिर उन्हें नई बात सूझ गई—सिंग कंपनी का इकबाल मिस्त्री हमारा फीलर ले गया है, जाओ, ले आओ, जरूरत पड़ेगी।

सिंग कंपनी बाजार के दूसरे नुक्कड़ पर थी। वहाँ तक आने—जाने में कुछ भी नहीं तो 10—15 मिनट तो लग ही जाते। मैंने बहाना बनाया—कुंदन अभी अपनी गाड़ी टेस्टिंग के लिए उधर ले जाएगा, उसी के साथ जाकर ले जाऊँगा।

—अच्छा, कुंदन के साथ ही काम करो, जितनी जल्दी हो जाए उतना ही अच्छा। —उस्ताद फिर नमी से बोलने लगे।

—कुंदन के साथ तो फकीरा काम कर रहा है,—मैंने फिर ब्रेक लगाया।

ऐसा पहले कभी नहीं हुआ था। उस्ताद के माथे पर बल पड़ गए। तो भी अपने मन का भाव मुझसे छुपाते हुए बोले—जवान आदमी हो, सिंग कंपनी तक पैदल ही चले जाओगे, तो क्या थक जाओगे?

अब बहानेबाजी की गुंजाइश नहीं थी, सीधे—सीधे कहना ही पड़ा— मैं अभी कहीं नहीं जाऊँगा, उस्ताद!

—क्या डॉक्टर ने कहा है यहाँ बैठने? झल्लाकर उस्ताद बोले।

–फिर रोज–रोज टैमिंग बाँधते वक्त उठा देने के लिए आपसे भी डॉक्टर ने ही कहा होगा!–आवेश में मेरे मुँह से भी निकल पड़ा।

उस्ताद कुछ बोले नहीं। क्रोध के कारण जैसे उनका सारा शरीर जला जा रहा था। उनकी मुखाकृति देखकर लगता था, जैसे वह बड़ी कठिनाई ने अपने–आपको वश में किए हुए हों। तेजी की ओर मुड़कर धीमे से उन्होंने कहा–औजार समेट ले, बे! इस गाड़ी पर हम काम नहीं करेंगे।– और वह पेट्रोल के एक खाली टिन के ऊपर गंभीर मुद्रा बनाकर जा बैठे।

सेक्शन के बहुतेरे कारीगारों ने हमारी बातें सुन ली थीं, लेकिन नजदीक आकर कुछ कहने–सुनने का साहस किसी को भी नहीं हुआ।

बात आगे बढ़ गई। हमने देखा, कोई आध घंटे बाद मालिक हमारे सेक्शन में चले आ रहे थे। अपनी अज्ञानता प्रदर्शित करते हुए उन्होंने बड़े भोलेपन से पूछा–मिस्त्री! वो कप्तान साहब की जीप शाम तक तैयार हो जाएगी न? उन्हें कल शिकार पर जाना है।

उस्ताद को यही मौक़ा चाहिए था। पेट्रोल के टिन पर से उठते हुए बोले– साहेब! एक लुगाई के दस खसम होंगे, तो क्या गिरस्ती चलेगी?

मालिक तो सब–कुछ जानते थे, फिर भी हैरानी दिखाते हुए मुस्कराकर बोले–क्या हुआ, मिस्त्री? आज मिस्त्रानी ने रोटी तो कम नहीं बाँधी!

अपने शब्दों में भरपूर व्यंग भरकर उस्ताद बोले– साहेब! या तो इस कारखाने में गाड़ियाँ ही बने या यहाँ स्कूल ही लगे!

–अच्छा, अच्छा। तुम जीप को देखो, आज दे देनी है– वर्ना तुम्हारी ही बदनामी होगी। कप्तान साहब तुम्हें बहुत मानते हैं।– मालिक ने प्रशंसा की ग्रीज लगाना शुरू की। मेरी ओर एक तेज दृष्टि डालकर अपने साथ चलने का संकेत देकर वह दफ्तर के बड़े कमरे में चले गए।

मैं रायसाहब के कमरे में पहुँचा, तो मेरा गला सूख रहा था। यदि वह घटना के संबंध में कुछ पूछते भी, तो घबराहट में कुछ न बता पाता। परंतु उनकी बातें सुनकर ऐसा लगा कि वह सब–कुछ जानते हैं। शायद किसी कारीगर ने उन्हें पूरी

बात बता दी थी। उन्होंने मुझे समझ–बुझकर वापस भेज दिया। सेक्शन में लौटा, तो देखा, उस्ताद उसी इंजन पर काम कर रहे थे। पास में 4–6 कारीगर घेरे हुए थे। शायद मेरे ही संबंध में बातें हो रही थीं। दूसरे कोने में खड़ी एक गाड़ी पर काम करने के विचार से उधर चल दिया। उस्ताद का स्वर कानो में पड़ा–हम भी काम सीखने जाते थे, सभी जाते हैं! माँ के पेट से तो कोई काम सीखकर आता नहीं! हम तो किसी से पूछ कहते नहीं, कौड़ी का भी अपना प्रायबिट (प्राइवेट) काम नहीं कराते। हमारे उस्ताद थे, दे मार, दे मार हुलिया बिगाड़ देते थे! ऊपर से दिन में बीस बखत चिलम भरो, पान लाओ, घर से रोटी लाओ, प्यास लगे, तो पानी पिलाओ! रगड़ते–रगड़ते चार चाल हुए, तब कहीं जाकर बतलाया मोटर का मुँह किधर है और पूँछ किधर। एक आजकल के छोकरे हैं, औजारों के नाम तो मालूम नहीं, कल कारखाने की शक्ल देखी है और आज मिस्त्री बनने चले हैं! जाने नौ महीने माँ के पेट में कैसे रहते हैं।

उस्ताद की ओर मेरी पीठ थी, परंतु तो भी उनकी क्रुद्ध दृष्टि कारीगरों की व्यंग्यमय मुस्कान और एक सम्मिलित उपेक्षा का आभास मैं वहीं खड़े–खड़े अनुभव कर रहा था। राय साहब के उपदेश ने मेरा मुँह बंद कर दिया था, इस कारण उठकर बाहर चल आया। सिगरेट सुलगाकर मुँह लटकाए बैठा रहा।

दिन बीतते रहे। उस दिन से उस्ताद से बोल–चाल बंद थी। जो कुछ कहना–सुनना होता, उस्ताद से टेढ़े–तिरछे ढंग से कह–सुन लिया जाता। किसी कारण मुझसे रुष्ट हो जाने पर वह डाँट–डपट, सीख–उपदेश भी टेढ़े–तिरछे ढंग से ही देते थे। एक दिन काम कर चुकने पर सुस्ताने बैठ गया था। देखा, पास ही दो–एक कारीगरों की ओर मुँह कर उस्ताद बड़बड़ा रहे थे– लिखना–पढ़ना ही बस कुछ नहीं होता, गुनना भी कुछ होता है। लिख–पढ़कर बाम्हन अपनी पोथी को पूजते हैं, बनिया अपने तराजू को पूजता है...

मैं यथास्थान बैठा रहा, न कुछ न समझ। उस्ताद मेरी ओर देखकर फिर कुछ अधिक उत्तेजित स्वर में कहने लगे–लड़कपन में एक बार भूल में औजारों के बकस पर पैर रख दिया था। दूर से उस्ताद ने देख लिया। उनके हाथ में पेचकस था। वहीं से दे मारा। आज भी माथे पर घाव है। –अपने दहिने हाथ से उस्ताद कपाल टटोलने लगे। घाव दाईं और था, पर उनका हाथ बाईं ओर फिर रहा था।

तभी उनकी उत्तेजना का कारण समझ में आ गया। मैं अपने टूॅल–बॉक्स के ऊपर बैठा था। लज्जित–सा उठ खड़ा हुआ।

रोड़वेज के कारखाने में नौकरी मिली है। लखनऊ जाने से पहले एक बार सब से मिल लेने के लिए कल रायसाहब के कारखाने में गया था। बैजू आखिरी बार भी चुटकी लेने से बाज नहीं आया। सबके सामने ही पूछने लगा–क्यों, बाबू सरकारी नौकरी में वालटैमिंग बाँधना न आने से भी काम चल जाता है?

पुरानी याद ताजा हो आई। लोग मुस्करा दिए। बड़ी प्यारी मुस्कान! विदा के उन क्षणों में उस मुस्कान में पहलेवाला वह व्यंग्य नहीं था। मैंने भी निर्मल भाव से उत्तर दिया– नहीं बे, अब तो मैं सीख गया हूँ।

–किताब में पढ़ा होगा? –कुंदन ने अनुमान लगाकर पूछा।

–हाँ, अंग्रेजी की किताब में, हमारे हिंदुस्तानी भाई तो बड़े काइयाँ होते हैं!–मैंने भी चुटकी ली।

कुदंन ने झेंपकर आँखें झुका लीं।

पास ही मैसी के अड्डे पर एक इंजन खुला पड़ा था। मेरी परीक्षा लेने के लिए ही जैसे बैजू ने कहा–बाबू! जरा हमें भी बता दो इंजन का वालटैम कैसे बाँधते हैं?

मैंने गौर से इंजन को देखा। किताब में पढ़कर जो बात समझ में आ गई थी, उसे प्रत्यक्ष देखने पर न समझ पाया। मुझे असमंजस में देख लोग भाँप गए होंगे। लेकिन बात को हँसी में उड़ा देने के लिए मैंने बैजू से कहा– अभी दो–चार साल और चिलम भरो! कल तो कारखाने की शक्ल देखी है, आज ही मिस्त्री बन जाना चाहते हो!

उस्ताद छुट्टी पर थे, इस कारण सभी ने खुलकर ठहाका लगाया।

गाड़ी बारह बजे छूटती है। घर में माँ की तबीयत ठीक नहीं है। इस कारण घरवाले मुझे स्टेशन तक छोड़कर जल्दी ही चले गए थे। एकाकी बैठा सोच रहा था कि इस शहर में कितने अपने –पराये बने, कितने मिले, कितने बिछुड़े! तभी उस्ताद की याद हो आई। सोचने लगा, कल उनकी छुट्टी थी, पर यदि छुट्टी न भी होती, तो

क्या में सहज भाव से उनसे विदा ले पता? पर तभी जो कुछ देखा, उसे देखकर अपनी आँखों पर विश्वास न कर सका। लम्बे बरानकोट में अपने शरीर को ढाँके उस्ताद चले आ रहे थे। इतनी रात गए वह कभी बाहर नहीं निकलते थे। कारखाने में कभी किंहीं विशेष कारणों से उस्ताद मौज में होते, तो हथेली पर तंबाकू मलता–मलता बैजू उनके पास आ जाता। उस्ताद गुस्कराकर पूछते–क्या जादू–मंतर फेर रहा है हथेली में?

बैजू मसखरी करता–उस्ताद, संजीवनी बूटी है, वही जो हनुमानजी ने लक्षमनजी को पिलायी थी!

–ला थोड़ा इधर दे,– उस्ताद हाथ बढ़ते। मैसी नजदीक आकर पूछता–सिगरेट दूँ, उस्ताद? –नहीं, सिगरेट नहीं, तकलीफ देता है।–उस्ताद दमे की शिकायत करते। फिर कुछ देर उसी मौज में बातें होतीं।

एक दिन बैजू बोला।–उस्ताद, किसी दिन सिनेमा चलो। मजीस्टिक में नया खेल लगा है। बहुत जोरदार। साली ऐसा नाचती है कि बस कतल कर देती है! बस, यहाँ तक लहँगा... अपनी जाँघों पर उसने हाथ रख दिया।

उस्ताद ने उसके सिर पर हल्की–सी धौल जमाकर पूछा–कितने बजे होता है?

–सेकिन सो, रात को साढ़े नौ से।

सुनकर उस्ताद ने कान पकड़ लिए–अब तो रात की ठंड में निकला ही नहीं जाता। दूसरे ही दिन खाट पकड़नी पड़ती है। यह साला बुढ़ापा क्या आया, सब चौपट कर दिया।

पर उस्ताद आज आधी रात को स्टेशन पर किसे छोड़ने आए थे? मेरे डिब्बे के नजदीक से होकर गए, तो मैंने जाने क्यों मुँह फेर लिया। वह चले गए। सभी डिब्बों में किसी को खोज लेने पर वह निराश–से लौट रहे थे। मैंने अपना मुँह दूसरी ओर फेर लिया। लेकिन इस बार मैंने अुनभव किया कि एक भारी–भारी–सा हाथ मेरे कंधे पर रख दिया गया है। मुड़कर देखा, उस्ताद ही थे। कोई कुछ नहीं बोला। मैं उन्हें और वह मुझे देखते रहे।

उस्ताद ने फिर प्लेटफार्म की घड़ी की ओर देखा, गाड़ी छूटने में अभी पाँच मिनट शेष थे—अभी पाँच मिनट हैं,—वह बोले। शब्दों में कहीं कोई गाँठ, कोई पेंच नहीं, सब—कुछ सहज, स्वाभाविक।

—हाँ,—मैंने भी वैसे ही उत्तर दिया। वह डिब्बे में आ बैठे। और कुछ कहने से पहले उन्हें अपनी बात कह लेने की जल्दी थी। अपना हाथ मेरे कंधों पर रखे और आँखें जमीन पर टिकाए वह कहने लगे— वाल टैम बाँधना मुश्किल नहीं है। पहले नंबर पिस्टन को ऐसी हालत में रखो कि एक तरफ घुमाने से इन खुले और दूसरी तरफ घुमाने पर आउट। फिर कैम शाफ्ट और क्रैंकशाफ्ट की गरारियों में जो निशान होते हैं, उन्हें मिला दो। सभी इंजनों में थोढ़ा—बहुत फर्क करके ऐसा ही ही होता है।

गाड़ी ने पहली सीटी दे दी थी। उस्ताद उतरकर प्लेटफार्म पर आ गए। खिड़की पर हाथ टेककर बोले—समझ गए?

अगर न समझा होता, तो क्या वैसा कहकर उनके कन को कष्ट पहुँचा पाता? मैंने प्रसन्न होकर कहा—समझ गया, उस्ताद, बिल्कुल अच्छी तरह समझ गया!

कितना संतोष उभर आया था उनके चेहरे पर! मेरे कंधों को स्नेह से थोड़ा दबाकर वह लौट पड़े। गाड़ी के चलने की प्रतीक्षा भी उन्होंने नहीं की। जाने किस भावना के आवेग में मेरी आँखें गीली हो आईं। तभी समझ पाया कि उस्ताद गाड़ी के चलने की मिनट—भर की प्रतीक्षा भी क्यों न कर पाए होंगे।

रेल ने चाल पकड़ ली है। मैं सिगरेट सुलगा लेता हूँ। सब—कुछ पीछे छूटता चला जा रहा है। रात में कभी भी बाहर न निकलने वाला उस्ताद इस आधी रात में निर्जन सड़क पर एकाकी चले जा रहे होंगे। कितने संतुष्ट! कितने प्रसन्न! सोचता हूँ, उन्हें सिगरेट पीने के लिए भी नहीं पूछ पाया। यों वह सिगरेट नहीं पीते, पर शायद आज पी लेते, जरूर पीते! बाबू के इस आग्रह को वह चाहकर भी नहीं टाल पाते! ❐❐